संपादकीय

छात्रहित से खिलवाड़

वैसे तो बृहद् भारत के किसी न किसी विश्वविद्यालय में धरना, प्रदर्शन, जुलूस, मार्च आदि के रूप में विरोध प्रदर्शन सदैव कहीं न कहीं चल रहा होता है, किंतु पिछले कुछ वर्षों से दिल्ली का जवाहर लाल नेहरू केंद्रीय विश्वविद्यालय देशविरोधी नारों तथा नकाबपोशों द्वारा मारपीट किए जाने के कारण सुर्खियों का सरताज बना है। छात्रावास, सुरक्षा जमा राशि, भोजनालय, सालाना शुल्क आदि विभिन्न स्तरों पर एकमुश्त शुल्क बढ़ोतरी को लेकर कक्षाओं, परीक्षाओं और पंजीकरण आदि के बहिष्कार के साथ प्रदर्शन का सिलसिला लंबा चला है। विश्वविद्यालय प्रशासन, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय की वार्ता के बाद भी मामला सुलझ नहीं सका है, हालाँकि बढ़े हुए शुल्क में कटौती की गई है और यूजीसी द्वारा तीन महीने का बढ़ा शुल्क वहन करने का जिम्मा अपने ऊपर लेने की खबर है, पर यह देर से लिया गया फैसला है। किसी भी स्तर पर शुल्क-वृद्धि छात्रों के खिलाफ जाता है, लेकिन जब वह एकमुश्त बढ़ता है, तब उसका विरोध होना स्वाभाविक है। आखिर छात्र विरोध नहीं करेंगे तो फिर कौन करेगा? शुल्क की समीक्षा एक नियत समय पर सालाना या तीन साल अथवा पाँच साल पर होनी चाहिए और उसके साथ वृद्धि भी, पर दस-बीस साल तक चुप रहना और फिर एकाएक बहुत ज्यादा वृद्धि ठीक नहीं है। कहा जा रहा है कि लंबे समय से शुल्क में कोई बढ़ोतरी नहीं हुई थी, इसलिए इतनी वृद्धि करना पड़ी, पर पहले की जानी-अनजानी त्रुटियों के लिए एक नई गलती ईजाद करना कितना मुनासिब है? अचानक बढ़ोतरी से किसी का भी बजट गड़बड़ाएगा। छात्रों का आक्रोश स्वाभाविक है, पर उस आक्रोश की अभिव्यक्ति के लिए पढ़ाई-लिखाई को ठप कर देना, परीक्षा और पंजीजन आदि संपन्न न होने देना अंततः छात्रों का अपना नुकसान है। इसी दरम्यान नकाबपोशों द्वारा परिसर में घुसकर छात्रा-छात्राओं तथा दो-तीन शिक्षकों के साथ दो-तीन घंटे तक मारपीट की गई और फिर मारपीट करने वाले आराम से निकल गए या फिर अपनी नई पहचान में आ गए। वे कौन थे - अभी पूरी तरह साफ नहीं है। इस दौरान पुलिस का परिसर के गेट पर खड़ा रहना, हस्तक्षेप के लिए जेएनयू प्रशासन का इंतजार करना और प्रशासन द्वारा पौने आठ बजे तक अनुमति न देना कई सवाल खड़ा करता है। क्या इसे छात्रों के समूह द्वारा पढ़ाई-लिखाई रोके जाने और पंजीयन में आए अवरोध से उत्पन्न प्रतिक्रिया माना जा सकता है? इस विश्वविद्यालय की ख्याति और वैश्विक रैंकिंग में स्थान है। छात्र भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अपना झंडा गाड़ते रहे हैं, हालाँकि जेएनयू परंपरागत तौर पर वामपंथियों का गढ़ रहा है, पर यह तब की बात है, जब प्रायः वामपंथी ही बौद्धिक कहलाते थे।

पिछले पाँच जनवरी को परिसर में हुई मारपीट में दोनों पक्षों के लोग वामपंथी और दक्षिणपंथी छात्र घायल हुए हैं। बाहरी लोगों का प्रवेश कहीं अन्य के बनिस्बत यहाँ कठिन है, क्योंकि किसी कॉलेज को संबद्धता दिए बिना यह परिसर में सिमटा और सुरक्षित है। विश्वविद्यालय के कुलपति ने कहा है कि छात्रावासों में बाहरी लोगों का रहना बड़ी समस्या है। जहाँ बाहरी लोग कैंपस और छात्रावास में रह रहे हों, वहाँ कुछ दूसरे लोगों के प्रवेश के रास्ते बनेंगे ही। सरकार नागरिकता संशोधन बिल और एनआरसी द्वारा शरणार्थियों और घुसपैठियों को चिह्नित कर शरण देने और खदेड़ने के लिए प्रतिबद्धता दर्शा रही है, तो क्या परिसर से बाहरी लोगों को नहीं खदेड़ सकती? बाहरी तत्वों की उपस्थिति केवल जेएनयू की समस्या नहीं है। प्रायः विश्वविद्यालयों के हॉस्टलों में ऐसे लोग मिल जाएँगे, जिनसे सही जरूररतमंद छात्रों को कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जेएनयू से सुरक्षा गार्डों को हटाकर सेवानिवृत्त सैनिकों की तैनाती की गई थी, हालाँकि इनकी संख्या 400 से घटाकर 300 से भी कम कर दी गई। बावजूद इसके, नकाबपोश गुंडा-तत्व

अंदर घुसने और मारपीट करने में कामयाब हो गए। जो पुलिस जामिया में पत्थर फेंकने वालों का पीछा करते हुए पुस्तकालय तक जाकर छात्र-छात्राओं पर बल प्रयोग कर सकती है, वह जेएनयू के गेट पर तीन घंटे तक इंतजार करती रही। क्या यह जामिया वाले आरोपों का प्रत्युत्तर है?

इस पूरे प्रकरण को दो स्तरों पर देखा जा सकता है। एक, शासन-प्रशासन खासकर जेएनयू प्रशासन की नाकामी और दूसरा, छात्र राजनीति का गुटों में विभक्त होना। छात्र संगठनों, शिक्षक संगठनों, कर्मचारी संघों का गठन छात्रों, शिक्षकों, कर्मचारियों के हितों की रक्षा के लिए हुआ है, लेकिन जब छात्र एक-दूसरे से विपरीत हितों के लिए आपसी शत्रुता तक पहुँच जाएँ, तब प्रश्न खड़ा होता है कि यह छात्र हित है या कुछ और? इसके पीछे कारण है राजनीतिक दलों से छात्र संगठनों की सीधी संबद्धता। छात्र राजनीति दलीय हितों से सन्नद्ध या कहें तो दलीय स्वार्थों की पूर्ति का संबल बन गई है, अपने-अपने पैतृक दलों के विचारों के पोषण और विस्तार के लिए इस्तेमाल होने लगी है, युवाओं में पैठ बनाने का आधार बन गई है। सभी दलों का अपना-अपना छात्र संगठन है। दूसरे शब्दों में, उन्हीं छात्र संगठनों का अस्तित्व टिका है, जिनका राजनीतिक दलों से जुड़ाव है। पूर्व केंद्रीय मंत्री उमा भारती ने कभी सुझाव रखा था कि छात्रसंघों के पदाधिकारी टॉपर छात्रों को बनाना चाहिए। उनका यह सुझाव काबिलेगौर है, हालाँकि लोकतांत्रिक मान्यताओं के विपरीत भी है, क्योंकि जब सामान्य चुनाव के लिए ऐसी कोई अर्हता नहीं है तो छात्रसंघ चुनाव के लिए क्यों? और दूसरा, जो टॉपर हो, वह नेतृत्व क्षमता में भी अव्वल हो - यह जरूरी नहीं; फिर मेधावी छात्र लफड़े-पचड़ों में क्यों पड़ना चाहेंगे। लेकिन छात्र राजनीति की वर्तमान दशा देखते हुए यह सुझाव अप्रासंगिक नहीं है। आखिर इन्हीं सब कारणों से अनेक स्थानों पर छात्रसंघ चुनावों पर स्थायी-अस्थायी रोक लगती रही है। छात्र चेतना से अनुप्राणित होकर छात्र संगठनों को समझना चाहिए कि माँग माँग की तरह होनी चाहिए और सुझाव सुझाव की तरह। माँग जरूरी नहीं कि मानी ही जाए। देश में अनगिनत मुद्दे हैं, जिन पर विचार-प्रदर्शन किए जाएँ तो समय कम पड़ेगा, लेकिन मुद्दे खत्म नहीं होंगे। इसलिए छात्रों को छात्रहित के मुद्दे तक सीमित रहना चाहिए, बाकी मुद्दे दूसरे संगठनों, राजनीतिक दलों, स्वयंसेवियों के लिए छोड़ देना चाहिए। यदि बहुत महत्वपूर्ण विषय, जिस पर चुप रहना उचित नहीं लगता तो हॉस्टल तथा विश्वविद्यालय परिसर का इस्तेमाल किए बिना, अध्ययन-अध्यापन में विघ्न-बाधा डाले बिना, उससे इतर के समय में बाहर यह सब करना उनके स्वविवेक के अधिकार-क्षेत्र में है।

अत्याधुनिक आवश्यकताओं तथा रोजगार की संभावनाओं के अनुरूप पाठयक्रमों का नियमित नवीनीकरण व निर्माण, कक्षाओं-परीक्षाओं का समयबद्ध सुचारु संचालन, गुणवत्तापूर्ण अनुसंधान से नए-नए आयामों को खोलने, शुल्क की नियमित समीक्षा व व्यावहारिक बढ़ोतरी, परिसर को बाहरी तत्वों से पूर्णतः मुक्त करने, परीक्षा-कॉपियों का पारदर्शितापूर्ण मूल्यांकन और परीक्षकों की जवाबदेही तय करने जैसे विषयों पर विश्वविद्यालयों के लिए अलग-अलग नियम बनाने की बजाय एक केंदीकृत नियंत्रण नियमावली विकसित करना अत्यावश्यक है। प्रशासन उत्तरदायी हो, तो माँग की आवश्यकता सीमित होगी। आखिर इतना लंबा विरोध प्रदर्शन खिंचने के पीछे विश्वविद्यालय का उपेक्षापूर्ण रवैया भी कम जिम्मेदार नहीं। जो छात्र या छात्र संगठन दलीय हितों या राजनीति चमकाने के लिए विश्वविद्यालय के अध्ययन-अध्यापन को लगातार बाधित करते हैं, उन्हें बाहर का रास्ता दिखाया जाना चाहिए। अभिव्यक्ति की आजादी उतनी ही है, जितनी वह सदुपयोग में आती है। संवैधानिक सत्ता हो या असंवैधानिक, दुरुपयोग के साथ उसके अधिकार सीमित-समाप्त हो जाते हैं; अगर नहीं होते तो समाप्त हो जाने चाहिए। सीधी तांत्रिक संरचना के अलावे खुफिया तंत्रों के अंतर्सूत्र के बावजूद बिगड़ती स्थिति नाकामी का परिणाम है या हेठी का अथवा दोनों का - यह स्पष्ट होना चाहिए।